Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 13, Issue No. 1, April-2017, ISSN 2230-7540

समकालीन हिन्दी कहानीः सामाजिक एवं लोकतांत्रिक सरोकार

Dr. Rajendra Singh*

Associate Professor, Department of Hindi, Government Arts College, Sikar, Rajasthan

शोध सारांश – *हिन्दी गद्य की विभिन्न विधाओं में कहानी एक अत्यंत सशक्त एवं लोकप्रिय विधाओं में एक है बदले हुए परिवेश एवं समाज के साथ यह निरन्तर अपने को नये रूप में ढ़ालती रही है। स्वातंत्र्योत्तर दशकों में सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक परिवर्तनों के मध्यनजर कहानी विधा में अनेकानेक आन्दोलन दृष्टिगत हुए यथा-नयी कहानी, सहज कहानी, समान्तर कहानी, सचेतन कहानी, जनवादी कहानी आदि-आदि। समकालीन कहानीकारों ने वर्तमान जटिल यथार्थ, पल-पल परिवर्तित होते परिवेश, बदलते हुए जीवन मूल्यों को विभिन्न कोणों से देखा, परखा और अपनी अनुभूति के धरातल पर उस नये स्वर को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया। समकालीन कहानी जीवन के यथार्थ से सीधे टकराती है। वह जीवन के भोगे हुए सत्यों को ईमानदारी व प्रखरता के साथ अभिव्यक्त करती हुई आगे बढ़ती है। समकालीन कहानी में जो कुछ है, वह मनुष्य ही है, मनुष्य के इतर और कोई भेद नहीं।*

भूमण्डलीकरण एवं उदारीकरण के दौर ने बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध एवं इक्कीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के वर्षों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य को बहुत गहराई से प्रभावित किया है। पारिवारिक संबंधों का ताना-बाना बिखरने लगा है। संबंधों की धुरी केवल अर्थतंत्र में सीमित हो गई है। सारे मानवीय एवं आत्मीय रिश्ते अर्थाश्रित हो गए हैं। परम्परा एवं परिवेश से दूर मध्यम वर्ग मायावी दुनियां में दिग्भ्रमित है। आर्थिक मूल्यहीनता की जड़ में राजनीतिक मूल्यहीनता निहित है। भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद, जातिवाद, प्रांतवाद के आधार पर राजनीतिक नेतृत्व का व्यवहार हो गया है। नीचे से ऊपर रिश्वतखोरी का खेल चलने लगा है। धरती, धन शक्ति और प्रतिष्ठा तथाकथित वर्ग विशेष की स्थायी पूँजी बन रहा है। गरीबी, महामारी, कुपोषण, बेरोजगारी, सामाजिक अन्याय इत्यादि बुनियादी प्रश्नों से बड़े मंदिर-मस्जिद के मसले हो गए हैं। समकालीन कहानीकारों ने सामाजिक एवं लोकतांत्रिक सरोकारों के सवालों को बखूबी पकड़ा है और उसे अपनी कहानियों का कथ्य बनाया है। इन कहानियों का मानवीय बोध सकारात्मक चिंतन की पृष्ठभूमि बन सकता है।

मुख्य शब्दः *समकालीन, भूमण्डलीकरण, समीचीन, अमानवीय, समतावादी, अर्थवता, लोकतांत्रिक, सरोकार, बाजारवाद, उदारीकरण, मूल्यहीनता।*

----------X----------

हिन्दी गद्य की विभिन्न विधाओं में कहानी एक अत्यंत सशक्त एवं महत्वपूर्ण विधा है। यह अपने कलेवर में परिवेश को चित्रित करने वाली लोकप्रिय विधाओं में एक है। बदले हुए परिवेश एवं समाज के साथ यह निरन्तर अपने को नये रूप में ढ़ालती रही है। स्वातंत्र्योत्तर दशकों में सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक परिवर्तनों के मध्यनजर कहानी विधा में अनेकानेक आन्दोलन दृष्टिगत हुए यथा-नयी कहानी, सहज कहानी, समान्तर कहानी, सचेतन कहानी, जनवादी कहानी आदि-आदि। समकालीन कहानीकारों ने वर्तमान जटिल यथार्थ, पल-पल परिवर्तित होते परिवेश, बदलते हुए जीवन मूल्यों को विभिन्न कोणों से देखा, परखा और अपनी अनुभूति के धरातल पर उस नये स्वर को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया। समकालीन कहानी जीवन के यथार्थ से सीधे टकराती है। वह जीवन के भोगे हुए सत्यों को ईमानदारी व प्रखरता के साथ अभिव्यक्त करती हुई आगे बढ़ती है। समकालीन कहानी में जो कुछ है, वह मनुष्य ही है, मनुष्य के इतर और कोई भेद नहीं। आज के परिवेश में व्याप्त अनास्था, जिजीविषा, अकेलापन, अस्तित्वबोध, दैहिकता, राग-द्वेष, घुटन, टूटन, संत्रास इत्यादि के नये भावबोध ने कहानी के तथ्य, कथ्य एवं रूप संरचना को नये-नये प्रतिमान दिये जिससे यथार्थ रूप में अनेक आयाम उभरकर सामने आए। वस्तुतः समकालीन हिन्दी कहानी की अवधारणा में भूमण्डलीकरण, वैश्वीकरण, औद्योगिकीकरण और वैज्ञानिक

www.ignited.in

तथा तकनीकी सूचना का विकास है, जिससे मनुष्य की सोच अर्थ केन्द्रित हो चुकी है। विकराल रूप लेती आर्थिक विषमता, मूल्यों के विघटन एवं बिखराव, भय, कुण्ठा, निराशा, अकेलेपन एवं अजनबीपन के दर्द की छटपटाहट को चित्रित कर, हिन्दी कहानी अपने को समकालीन होने का अर्थ बोध कराती है। इस संदर्भ में डॉ. मधुरेश लिखते हैं कि "समकालीन हाने का अर्थ सिर्फ समय के बीच होने से नहीं है। समकालीन होने का अर्थ है समय के वैचारिक और रचनात्मक दबावों को झेलते हुए, उनसे उत्पन्न तनाओं और टकराहटों के बीच अपनी सर्जनशीलता द्वारा अपने होने को प्रमाणित करना।"[1]

कोई भी साहित्य या रचना या रचनाकार केवल तभी प्रासंगिक, समीचीन एवं शाश्वत कहला सकता है, जब वह अपने सामाजिक परिवेश, जीवन-पद्धति एवं समस्याओं के प्रति पाठक की संवेदनाओं को जागृत करने की सामथ्र्य रखता हो। व्यक्ति परिवार और समाज इन तीनों इकाइयों के मध्य होने वाली आपसी अन्तः क्रियाओं से सामाजिक सरोकारों की सृष्टि होती है। साहित्यिक संदर्भ में इसका तात्पर्य कोई कृति समाज के जिन-जिन पक्षों रूपों, आयामों, मुद्दों को विभिन्न रूपों में चित्रित करने से है। इस संबंध में विश्वनाथ तिवारी का वक्तव्य है कि "लेखक का रचना दायित्व दोनों एक-दूसरे में घुले-मिले होते हैं। वह अपनी रचना के प्रति जितना प्रतिबद्ध होता है उतना ही अपने चारों ओर की जिंदगी के प्रति भी। अंदर एवं बाहर के दोनों ही संसार उसके भीतर एक हो जाते हैं।"[2] समकालीन कहानीकार सामाजिक एवं लोकतांत्रिक सरोकारों के प्रति प्रतिबद्ध है। समकालीन परिस्थितियों एवं परिवेश के बदलाव की कसमकश तथा युगानुकूल जटिल जीवन संघर्ष का चित्रण उनकी कहानियों के दायरे में है।

हमारे समाज की विडम्बनापूर्ण त्रासदी है कि एक वर्ग के पास अकूत धन-सम्पदा है, दूसरे वर्ग के पास दो जुन की रोटी मय्यसर नहीं हो पाती। वे दीन-हीन, शोषित, दलित, आँसू व पीड़ा से बेकल जीवन की बुनियादी जरूरतों से वंचित है। औद्योगिकीकरण के कारण समाज में अनेकानेक समस्याएं यथा घनी और गंदी बस्तियों का निर्माण, वर्ग संघर्ष में अभिवृद्धि, बेकारी, औद्योगिक झगड़े, अपराध और अनैतिकता में वृद्धि, श्रमिक समस्याएं इत्यादि का प्रसार हुआ है। सहज स्वाभाविक जीवन-शैली से दूर सर्वत्र कृत्रिम जीवन का खोखलापन हावी है। डॉ. धीरजभाई वणकार लिखते हैं- "मूल्य समाज के आधार बिन्दु हैं। जिनके द्वारा किसी समाज या देश की संस्कृति व सभ्यता निर्मित होती रहती है। आज भिन्न परिस्थितियों ने जीवन मूल्यों को विशेष रूप में परिवर्तित किया है मुख्यतः शिक्षा, आबादी, वैज्ञानिक प्रगति, भौतिकवादी अवधारणा, नगरीकरण, औद्योगिकरण, राजनीति, व्यक्तिवाद तथा व्यक्तिक चेतना व पाश्चात्य सभ्यता ने प्रभावित किया जिसके कारण भारतीय जीवन मूल्यों के संक्रमण की जो स्थिति आई वह पिछले दशकों में नहीं थी। इन प्रवृतियों के कारण हमारे आचार-विचार, आदर्श व व्यवहार में अंतर आने लगा।"[3]

अर्थ प्रधान सामाजिक व्यवस्था के कारण वैयक्ति स्वार्थों में निरन्तर अभिवृद्धि हुई है। डॉ. पुष्पपाल सिंह लिखते हैं- "आज सामाजिक जीवन का एक महत्वपूर्ण पद्वा यह है कि आज हमारी सामाजिक संबंधों और पारिवारिक रिश्तों पर अर्थतंत्र हावी हो गया है। आत्मीय रिश्तों की पहचान और परख तथा उन संबंधों के निर्वाह में अर्थ प्रधान दृष्टि प्रमुख हो जाने से आज संबंध निभाएं नहीं ढ़ोए जाते हैं।"[4]

ममता कालिया की कहानी 'फर्क नहीं' में बिमला के पिता वर पक्ष की माँगों को पूरा नहीं कर पाने के कारण विवाह करने में असक्षम होते हैं- "पहली बार उसके पिता ने कहा था वह पाँच हजार नकद दे सकेंगे। लड़के के पिता ने दस हजार की माँग रखी। सरकते-सरकते उसके पिता आठ हजार पर आ गए थे, लेकिन लड़के वाले अब सोलह हजार माँगते थे। आठ हजार में ऊँची नौकरी वाला लड़का नहीं मिलता था, अध्ययनरत लड़का मिलता। बिमला के पिता नहीं चाहते थे कि दामाद और लड़की दोनों का खर्च विवाहोपरान्त भी वह उठाएँ।"[5]

समकालीन हिंदी कथा साहित्य में स्त्री समस्या को ऐतिहासिक एवं सामजिक परिपे्रक्ष्य में उठाया है। चित्रा मुद्गल, उषा प्रियवंदा, मन्नू भण्डारी, अनामिका, मैत्रेयी पुष्पा, ममता कालिया इत्यादि अनेक कथाकारों ने समाज-रचना के वर्ग तथा वर्ग की विसंगतियों स्त्री के संत्रास, उसके अमानवीय शोषण का मार्मिक चित्रण कर, समतावादी सोच को आगे बढ़ाया है। ममता कालिया की कहानी 'जाँच अभी जारी है' में अपर्णा बैंक से मिले स्पष्टीकरण को बहाल कराते-कराते, दुनिया की नजरों में गुनहगार हो जाती है। सच्ची एवं ईमानदार कार्मिक होने के बावजूद समाज की नजर में भ्रष्ट बन जाती है। प्रत्येक व्यक्ति की नजर उसके प्रति टेढ़ी हो जाती है। "अब उसे उसका कुछ कुछ अंदाजा था कि इसका नतीजा क्या होगा? उसके निर्दोष साबित होने के पूरे आसार थे, पर इस सम्भावना के बावजूद अपर्णा के चेहरे की मनहूसियत घट नहीं बढ़ रही थी। उसे लग रहा था कि असली सजा तो वह पा चुकी है। दुनिया की नजरों में गुनहगार की हैसियत से जी लेना उसके लिए एक भयंकर अनुभव रहा था, जिसे जांच अधिकारी के दिलासे भी कम नहीं कर सके थे।"[6]

समकालीन कहानीकारों ने आज के सवालों को गंभीरता के साथ पकड़ा और विचार किया है। आम आदमी के सवालों और नयी

सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में बदलते मध्यवर्गीय समाज की चिंताओं को अभिव्यक्त किया है। नौकरी पेशा महिलाओं की हर महीने मिलने वाली आया का मोह उनके पति एवं परिवारजन नहीं छोड़ पाते। चित्रा मुद्गल की कहानी 'स्टेपनी' में यह यथार्थ चित्रित हुआ है- नौकरी कर रही आभा जब गर्भावस्था के दौरान नौकरी छोड़ने की सोच रहीं होती है तभी उसका पति विनोद ऐसा करने से मना करता है। गर्भावस्था के आखिरी महीनों में उसने सोचा था- "बच्चा पालना और नौकरी करना साथ-साथ संभव नहीं। नौकरी छोड़ देगी। बच्चा जब स्कूल जाने लगेगा, तब पुनः विचार करेगी नौकरी के विषय में। लेकिन निश्चय दृढ़ होने से पूर्व ही आर्थिक दबाव और आत्मनिर्भरता की कचोट के चलते विवश हो उठा। तभी पति विनोद ने कहा " नौकरी आसानी से नहीं मिलती, संभल जाएगा सब। दीदी आ रही है। जचगी के लिए, आगे-पीछे नौकरानी भी ढ़ंग की मिल जायेगी। पूरे समय के लिए न सही। अभी तो तुम्हारे हाथ में दो-दो आय आ रही हैं, खुलकर खर्च कर पाती हो, फिर पैसे-पैसे के लिए सोचना होगा।"[7]

शिवमूर्ति के 'केसर-कस्तूरी' कहानी संग्रह की कहानी 'अकाल दंड' की केन्द्रीय पात्र गरीबी, अत्याचार व शोषण की शिकार दलित महिला सुरजी के प्रतिरोध व संघर्ष की कहानी है। वह आततायी सेक्रेटरी को सजा देने में सफल होती है, इसके लिए भले ही उसे अपराधिनी बनना पड़ा। "सिकरेटरी बाबू पलंग पर नंग धडंग पड़े छटपटा रहे हैं। सुरजी ने हँसिए से उसकी देह का नाजुक हिस्सा अलग कर दिया है और पिछवाड़े के रास्ते भागकर अंधेरे में गुम हो गई है।"[8]

राजी सेठ की कहानी 'अंधे मोड़ से आगे' में कहानीकार ने अनन्त गहराई में उतरकर नारी मन के भीतर की उथल-पुथल, पीड़ा तथा छटपटाहट को मार्मिक ढ़ंग से प्रकट किया है। कहानी की नायिका दो पुरूषों के बीच अपनी अर्थवता खोजती हुई ऐसे अंधे मोड़ पर पहुंच जाती है जहां पर उसे अपने जीवन की सार्थकता नजर नहीं आती है। सुरजीत कई कई दिनों तक बाहर काम करता है। यहां तक कि वह रात को भी घर नहीं लौटता। फिर भी वह सुरजीत की हिंसा का शिकार होती रहती थी। सुरजीत की यही उदासीनता उसे उसके पति के बॉस की ओर आकर्षित होने के लिए मजबूर कर देती है। इतना सब होने के बाद भी वह सुरजीत से उम्मीद करती है कि कभी वह पति के अधिकार से ही उसे रोकने की कोशिश करता तो उसकी जिन्दगी इस मोड़ पर आकर खड़ी नहीं होती। उसने एकदम मुक्ति दे दी थी जिससे उसे महसूस हुआ कि वह तो पहले से ही सड़क पर खड़ी थी। घर में होती तो उसके जाने पर घर की दीवारें जरूर थरथराती।"[9] अलग-अलग क्षेत्र में महिलाओं की विभिन्न भूमिकाओं के निर्वहन में उनके अपने अनुभव हैं। पुष्पपाल सिंह लिखते हैं- "घर परिवार की मध्यवर्गीय दिनचर्या के बीच नारी ने अपनी नौकरी का समीकरण किस तरह बिठा रखा है, नौकरी पेशा नारी का संघर्ष कितना जटिल है, नौकरी करते हुए उसे भावात्मक संघर्ष की किन-किन स्थितियों से गुजरना होता है, यह सब प्रामाणिक रूप से जानने के लिए हमें महिला कहानिकारों की कहानियों को पढ़ना चाहिए।"[10] इन महिला कहानीकारों में मन्नू भण्डारी, उषा प्रियवंदा, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, पुष्पा मैत्रयी, ममता कालिया, चित्रा मुद्गल, प्रभा खेतान, सुधा अरोड़ा, नासिरा शर्मा, पुखरी सिन्हा, मणिका मोहिनी, निरूपमा सेवती, मंजुल भगत, राजी सेठ, मेहरून्निसा परवेज, सूर्यबाला, मालती सिंह, प्रत्यक्षा, जया जादवानी, चंद्रकांता, मनीषा कुलश्रेष्ठ, उर्मिला शिरीश इत्यादि की एक लम्बी फहरिस्त है। इन महिला कहानीकारों की कहानियों में नारी जीवन की विभिन्न समस्याओं को वैचारिक प्रतिबद्धताओं, भिन्न मानसिकताओं के साथ उजागर करने के तेवर अलग हैं। समस्याएं चाहे वैवाहिक जीवन से जुड़ी दहेज, अनमेल विवाह, प्रेम विवाह, विवाहपूर्व के आकर्षण, विवाहेत्तर आकर्षण, काम-यौन सम्बन्ध इत्यादि से सम्बंधित हो या फिर पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन की समस्याएं हो यथा प्रौढ़ कुमारियों की, पुरूष के अनुदार दृष्टिकोण, समतुल्य अहं की टकराहट, विवाह-विच्छेद, वेश्या, शिक्षा, कामकाजी महिला इत्यादि की समस्या हो समकालीन कहानियों एवं कहानीकारों का कथ्य बनी हैं।

साहित्य एवं समाज का बहुत गहरा संबंध है। सामाजिक परिवर्तनों में साहित्य की अहम भूमिका होती है। स्वतंत्रता से पूर्व साहित्य में सबका मुख्य स्वर स्वतंत्रता का था परन्तु आज लोकतंत्र के लुभावने नारों एवं राजनीतिक दलों के चुनावी घोषणा पत्रों के बीच नुचती अस्मिता, सत्ताधारियों के आश्वासनों की सड़ांध, घुटती सांसों के साथ आम आदमी की कुंठित भावनाएं एवं आकांक्षाएं, विवशता और नैराश्यपूर्ण अभिशप्त परिवेश का है। आज भी हम स्वर्ण-दलित, अगड़ी-पिछड़ी जातियों, अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक, अमीर-गरीब वर्ग की गहरी खाइयों में पड़े हुए हैं। समकालीन कहानीकारों के चिंतन एवं कल्पना केन्द्र में देशकाल की स्थिति के साथ-साथ समाज, सामाजिक एवं लोकतांत्रिक सरोकार सदैव उसके जेहन में रहे हैं। व्यक्ति एवं समाज के उत्थान-पतन में राजनीति का योगदान सर्वाधिक होता है। राजनीति आज वह राजनीति नहीं है जो देश की व्यवस्था को नियंत्रित एवं संचालित करती हो। आज के भ्रष्ट राजनीतिक परिवेश राजनेताओं की आजीविका का साधन बन गया है। सत्ता में फैले भ्रष्टाचार, कूटनीति, गुण्डाराज, राजनीतिक दायित्वहीनता, लोभ, लालच को समकालीन कथाकारों ने यथार्थता से चित्रित किया है। वेदप्रकाश अमिताभ की चर्चित कहानी 'सर्वधर्मे निधनं श्रेयं' का रमेशचन्द्र कहता है- "पूरा

www.ignited.in

गॉड है, ये जयदेव। काहू दिन को 'पूरौ को पूरौ' कॉलेज को पचा जायगौ। कॉलेज की सैंकड़ो बोरी सीमेंट कहां गयी।"[11] भारत में लोकतंत्र अपने जन सरोकारों से विलग होता गया है। राजनीतिक सत्ता को देश का पर्याय माना जाने लगा है। बाहर से लोकतांत्रिक दिखने वाला सत्तातंत्र अंदर से बेहद अलोकतांत्रिक एवं जन विरोधी है। अखिलेश ने अपनी 'श्रृंखला' कहानी में धन, भ्रष्टाचार और निरंकुशता की सिद्धान्तविहीन राजनीति की परतें उघाड़ने का प्रयास किया है। उन्होंने लोकतांत्रिक व्यवस्था के असंगत, विषमतापूर्ण दमनकारी प्रवृतियों के विरूद्ध प्रतिरोध कर गम्भीर सवाल उठाये हैं। समकालीन कहानियों में किसान, मजदूर, दलित, शोषित, स्त्री, आदिवासी, आप्रवासी समाज इत्यादि हाशिये के समाज का सवाल महत्वपूर्ण बन पड़े हैं। हरनोट की कहानी 'जीनकाठी' में राजनीतिक अवसरवाद, भ्रष्टाचार एवं संवेदनशून्यता के वास्तविक स्वरूप का चित्रण मिलता है। इसी प्रकार मृणाल पाण्डे का रचना संसार एक खास एवं नये अंदाज के तेवरों में है। संदर्भित परिवेश और उस परिवेश से जूझता टकराता चरित्र विलक्षण दिखाई पड़ता है। उनकी कहानी 'एक स्त्री का विदागीत' वर्तमान संघर्ष से भरी जिन्दगी का चित्र प्रस्तुत करती है। यह कहानी सावित्री के माध्यम से अतीत को तथा सुषमा के माध्यम से वर्तमान पीढ़ी के मूल्यों के द्वन्द को सशक्त रूप में उजागर करती हैं। उनकी चर्चित कहानी 'कोहरा और मछलियाँ' आधुनिक समाज की विसंगतियों पर प्रकाश डालती है।

समकालीन राजनीति के बाने की झलक अरविन्द कुमार सिंह की कहानी 'विषपाठ' में देखने को मिलती है। विषपाठ का रमाकान्त अपने मित्र यादव (प्रदेश सरकार का सचिव) के साथ इंटर कॉलेज के प्रांगण में आयोजित यादव महासम्मेलन में पहुंचता है। जहां यादव जाति के नाम पर जहर उगला जा रहा था उस समय रमाकान्त को दूसरे मित्र तिमिर घोष का वह वाक्य याद आता है जिसमें उसका कथन था कि "एक साजिश हो रही है- दुखी लोगों को बांट देने की। पहले हिन्दू-मुस्लिम बँटे। अब जातियाँ बँट रही हैं। एक दिन हिन्दुस्तान का हर घर और आदमी भी बँट जाएगा। गाँव शहर बन जाएगा। किसी को फुर्सत नहीं होगी दूसरों के बारे में सोचने की। संवेदना और विश्वास की नींव टूट जाएगी। साजिश करने वाले ऐश करेंगे।"[12]

भारत की परम्परागत मूल्यों एवं आदर्शों की राजनीति जिसमें स्वतंत्रता-समता और बंधुता का वाहक माना गया है, को आधार मानकर लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था को अपनाया गया परन्तु उस अपेक्षा पर वर्तमान राजनीति खरी नहीं उतरती। भ्रष्टाचार एवं राजनीति के अपराधीकरण ने लोक कल्याण की भावना समाप्तप्रायः सी हो गयी है। औद्योगिक सभ्यता में बढ़ते उपभोगवाद एवं निर्बाध बाजार ने गरीबी एवं असमानता की समस्या को अधिक विकराल बना दिया है। बाजारवाद की प्रतिस्पर्धा में सर्वत्र उतावलापन, चैंकाउपन तथा विज्ञापनों की भरमार है। बाजार प्रेरित इस जीवन शैली में अतिरिक्त सौंदर्य, असहज और आतंककारी रूप में विद्यमान है। इस विडम्बनापूर्ण जीवन शैली में जीवन की त्रासदी यह है कि अनुपयोगी को उपयोगी दिखाया जाकर अमानवीय तरीके से लूट की जा रही है। मनोज रूपड़ा की कहानी 'साज-नसाज' से सौंदर्यबोध जीवन और व्यक्ति में घटित होने वाले त्रासद प्रभाव को बड़ी मार्मिकता से चित्रित किया है। इस परिवर्तन का सूत्रधार नया वाद्य यंत्र 'सिंथेसाइजर' है जिसने पारम्परिक वाद्यों से जुड़े लोगों को इतिहास के कुड़े में डाल दिया है- "मैंने कुछ सोचते हुए कहा, "यह जापानी सिंथेसाइजर है। 'नहीं' उसने ऊँची आवाज में कहा "यह एक तानाशाह है। हत्यारा है इसी वजह दास बाबू और फ्रांसिस की जान गई। यही हम सबकी बदहाली का एकमात्र जिम्मेदार है।"[13] मनोज रूपड़ा की यह कहानी बाजारवाद एवं उपयोगितावाद के विरोध की सूचक कहानी है। नई आर्थिकी ने महानगरीय जीवन को अपने में इस प्रकार घेर लिया है कि जिन्दगी की जरूरतें कर्ज की किश्तों पर टिक गयी हैं। पंकट बिष्ट की 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते', उदयप्रकाश की 'पाल गोमरा का स्कूटर' कहानियों में बाजार से किश्तों में सामान खरीदने तथा उसे ई.एम.आई. के मार्फत एक नियत अवधि तक चुकाने की मार्मिक दास्तान का चित्रण है। ये कहानियां आम आदमी के टूटन एवं अलग-थलग पड़ने का त्रासददायक दृश्य प्रस्तुत करती हैं। पंकज बिष्ट की कहानी का मुख्य पात्र बिशन बाजारवादी एवं उपभोक्तावादी संस्कृति का शिकार बनकर मृतपाय हो जाता है। विगत दशकों में भूमण्डलीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण के दौर में जिस रूप में बाजारवाद एवं उपभोक्तावाद की गूंज सुनाई दे रही है, उसमें मानवीय संवेदनाएं क्षीण होती जा रही हैं। धर्मान्धता ने सौहार्द एवं सामाजिक समरसता की गहरी जड़ों को उखाड़ने की कोशिश की है, उससे व्याप्त भय, आशंका और अविश्वास ने पूरे समाज को अस्थिर कर दिया है। गीतांजलि श्री की कहानी 'यहां हाथी रहते थे' साम्प्रदायिक दंगों की अफवाह से उत्पन्न भय की कहानी है- "चूंकि अफवाह उड़ी है कि घर जलेगा और वह भी और वैसे एक को जला देना दोनों को जला देना ही होगा और वैसे ऐसी अफवाह उड़ा देना भी दोनों को जला देना है।[14] समकालीन समय के 'दबाव' एवं 'भय' ने व्यक्ति एवं समाज को झकझोरा है। स्वयं प्रकाश की पार्टीशन, पंकज बिष्ट की बच्चे गवाह नहीं हो सकते, उदय प्रकाश की तिरिछ, संजीव की पांव तले की दूब, शिवमूर्ति की तिरिया चरित्र, चित्रा मुदगल की लकड़बग्घा, मृणाल पाण्डेय की लड़कियाँ, ओमप्रकाश की वाल्मीकि की सलाम, मिथिलेश्वर की मेघना का निर्णय, मुर्शरफ आलम जौकी की गुलामबख्श, चंद्रशेखर जायसवाल की नकबेसर कागा ले भाग, जप्रकाश कर्दम की नो बार इत्यादि अनेक कहानीकारों

ने अपनी कहानियों में समकालीन समय के दबाव की अपनी अनुभूति को यथार्थता के साथ चित्रित किया है।

भूमण्डलीकरण एवं उदारीकरण के दौर ने बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध एवं इक्कीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के वर्षों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य को बहुत गहराई से प्रभावित किया है। पारिवारिक संबंधों का ताना-बाना बिखरने लगा है। संबंधों की धुरी केवल अर्थतंत्र में सीमित हो गई है। सारे मानवीय एवं आत्मीय रिश्ते अर्थाश्रित हो गए हैं। परम्परा एवं परिवेश से दूर मध्यम वर्ग मायावी दुनियां में दिग्भ्रमित है। आर्थिक मूल्यहीनता की जड़ में राजनीतिक मूल्यहीनता निहित है। भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद, जातिवाद, प्रंातवाद के आधार पर राजनीतिक नेतृत्व का व्यवहार हो गया है। नीचे से ऊपर रिश्वतखोरी का खेल चलने लगा है। धरती, धन शक्ति और प्रतिष्ठा तथाकथित वर्ग विशेष की स्थायी पूँजी बन रहा है। गरीबी, महामारी, कुपोषण, बेरोजगारी, सामाजिक अन्याय इत्यादि बुनियादी प्रश्नों से बड़े मंदिर-मस्जिद के मसले हो गए हैं। समकालीन कहानीकारों ने सामाजिक एवं लोकतांत्रिक सरोकारों के सवालों को बखूबी पकड़ा है और उसे अपनी कहानियों का कथ्य बनाया है। इन कहानियों का मानवीय बोध सकारात्मक चिंतन की पृष्ठभूमि बन सकता है।

सन्दर्भ:

1. गंगा प्रसाद विमल, समकालीन कहानी दशा और दृष्टि, पृष्ठ-166
2. विश्वनाथ तिवारी, रचना के सरोकार, पृष्ठ-32
3. डॉ. धीरज भाई वणकार, कमलेश्वर की कहानी में यथार्थ, पृष्ठ-178
4. डॉ. पुष्पाल सिंह, समकालीन कहानी, युगबोध का संदर्भ, पृष्ठ-126
5. ममता कालिया, फर्क नहीं, पृष्ठ-124
6. ममता कालिया, जाँच अभी जारी है, पृष्ठ-40
7. चित्रा मुद्दगल, आदि अनादि (भाग-तीन), पृष्ठ-60
8. पाखी, जून 2012, पृष्ठ-35
9. राजी सेठ, अंधे मोड़ से आगे, पृष्ठ-113
10. पुष्पपाल सिंह, समकालीन कहानी, युगबोध का संदर्भ, पृष्ठ-117
11. वेदप्रकाश अमिताभ, दुःख के पुल से, पृष्ठ-15
12. अरविन्द कुमार सिंह, उसका सच, पृष्ठ-46-47
13. मनोज रूपड़ा, साज-नसाज, श्रेष्ठ हिन्दी कहानियां 1999-2000, पृष्ठ-231
14. गीतांजली श्री, यहां हाथी रहते थे, पृष्ठ-48

Corresponding Author

Dr. Rajendra Singh*

Associate Professor, Department of Hindi, Government Arts College, Sikar, Rajasthan

sigarraj@gmail.com

www.ignited.in